*Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education*
*Vol. XV, Issue No. 1, April-2018, ISSN 2230-7540*

# धर्म व विज्ञान का समन्वय

**Dr. Anju Srivastava***

Associate Professor, Department of Sociology, Arya Kanya Degree College, Prayagraj (UP)

***सार –*** *नर और नारी का कार्यक्षेत्र भिन्न है। नारी गृह-व्यवस्था में संलग्न रहती है। गर्भ धारण और शिशु-पालन यह दोनों काम उसी को करने होते हैं। नर का कार्यक्षेत्र भिन्न है वह खेत, दफ्तर, कारखाने आदि में काम करता है और उस उपार्जन से गृह-व्यवस्था के लिए नारी की आवश्यकताएँ पूरी करता है। देखने में दोनों के बीच भारी भिन्नता दिखाई पड़ती है। शरीर की रचना की दृष्टि से भी कई अवयवों में प्रतिकूल दिखने वाला भारी अन्तर भी रहता है। सहज स्वभाव में भी थोड़ा, किन्तु महत्वपूर्ण अन्तर रहता है इतने पर भी वे दोनों एक-दूसरे के पूरक है। दोनों के सम्मिलित प्रयत्न से ही गृहस्थ की गाड़ी इन दो पहियों के सघन से ही गतिशील रहती और आगे बढ़ती है।*

*जागृति और सुशुप्ति का अन्तर स्पष्ट है। जागते समय मनुष्य सक्रिय रहता है और सोते समय वह निष्क्रिय बन जाता है। देखने वाले इस परस्पर विरोधी स्थिति ही कहेंगे। इतने पर भी शरीर शास्त्री यही कहेंगे कि दोनों स्थितियाँ एक-दूसरे के पूरक हैं। जागृति की थकान ही निद्रा लाती है और निद्रा का विश्राम ही जागृति के समय श्रम करने की क्षमता प्रदान करता है।*

----------X----------

सर्दी और गर्मी परस्पर विपरीत हैं पर दोनों के तालमेल से ही इस धरती का ऋतु सन्तुलन बना हुआ है। यदि इनमें से एक का ही अस्तित्व रहे दूसरी को हटा दिया जाय तो जीवन को स्थिर एवं विकसित बनाने की सम्भावना ही समाप्त हो जायेगी और यह धरती प्राणियों के रहने योग्य ही नहीं रह जायेगी। विपरीत के बीच एकता का यह विलक्षण तालमेल है।

पदार्थ और प्राण की जोड़ी भी इस प्रकार है। प्रकृति और पुरूष के संयोग को अर्धनारीश्वर की समता दी गई है। दोनों के सम्मिलन से ही अपना यह संसार चल रहा है। यदि मात्र पदार्थ ही रह जाय और कोई जीवधारी उसका अनुभव उपयोग करने के लिए शेष न रहे तो फिर उसका महत्व ही न रह जायेगा। अस्तित्व की दृष्टि से तो प्रकृति के अन्तराल में अभी भी असंख्य शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं पर उनका पूरा परिचय अपने को न होने के कारण स्थिति लगभग वैसी ही है मानों उनका कोई अस्तित्व ही न हो। यदि प्राणी न हो तो ब्रह्माण्ड में पदार्थ असीम भरा होने पर भी वह अपने आप में ही खोया रहेगा। अभी भी असंख्य नीहारिकाएँ और ग्रह-नक्षत्र ऐसे ही हैं जिनकी स्थिति और क्षमता परिपूर्ण होते हुए भी अपने लिए वे न होने के बराबर ही हैं।

यदि पदार्थ न हो तो प्राणी के अस्तित्व भी प्रभावी न हो सकेंगे। अदृश्य आत्माओं का परिचय भी तभी मिलता है जब किसी न किसी प्रकार वे स्कूल या सूक्ष्म पदार्थ के साथ सम्बद्ध होकर अपना अस्तित्व प्रकट कर सकने की स्थिति में होती हैं। ऐसा न होने पर आत्मा या परमात्मा एक ही स्थिति का ज्ञान न हो सकेगा। आत्मा का अस्तित्व तभी प्रकाश में आता है जब वह किसी न किसी न किसी प्रकार पदार्थ के साथ संयुक्त रहती है। परमात्मा के स्थूल या सूक्ष्म रूप में इन्द्रियगम्य बनने पर ही उसका आभास मिलता है अन्यथा निर्विकार ब्रह्म के सम्बन्ध में तो कल्पना करना तक नहीं बन पड़ता। पदार्थ के साथ जुड़ा न होने के कारण ही विज्ञान उसके अस्तित्व से इन्कार करता है।

कथन का तात्पर्य इतना ही है कि जड़ और चेतन के संयोग से प्राणी और पदार्थ की संयुक्त सत्ता के रूप में यह संसार का अस्तित्व दृष्टिगोचर हो रहा है। दोनों का संयोग बिछुड़ जाय तो फिर न तो पदार्थ के लिए प्राणी का और न प्राणी के लिए पदार्थ का अस्तित्व उपयोग शेष रह जायेगा। मन और बुद्धि का कार्यक्षेत्र यह पदार्थों से बना संसार ही है। वे इसी परिधि में परिभ्रमण करते हैं। इन्द्रियजन्य अनुभूतियाँ, मानसिक कल्पनाएँ, बौद्धिक विचारणाएँ अन्तःकरण की भाव सम्वेदनाएँ अपनी क्षमता तभी प्रकट कर सकती है जब शरीर अथवा पदार्थो के साथ उनका सम्बन्ध समन्वय बने। इसके बिना चिन्तन का सारा ढाँचा ही निष्क्रिय निरर्थक बन जायेगा।

www.ignited.in

अन्योन्याश्रित युग्मों में एक क्षेत्र ज्ञान और विज्ञान के समन्वय का भी है। भौतिक विज्ञान में बुद्धि और पदार्थ का संयोग काम करता है। भौतिक विज्ञान में बुद्धि और पदार्थ का संयोग काम करता हैं। आत्मिक विज्ञान में बुद्धि का वह परिष्कृत स्तर काम करता है। जिसे धर्म धारणा एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं। ब्रह्म-विद्या के विशालकाय तत्त्व-दर्शन में उसी की चर्चा है। स्पष्ट है कि इन क्षेत्रों में परस्पर सघन ताल-मेल होने की आवश्यकता है। एकाकी रह जाने पर तो दोनों ही अपूर्ण अपंग बन जाते हैं। ऐसी स्थिति को पूरी तरह नासमझी ही कहा जायेगा। इससे आगे बढ़कर वे दोनों यदि परस्पर लड़ने, झगड़ने लगें, एक-दूसरे के अस्तित्त्व को चुनौती देने लगें, अप्रामाणिक और अनावश्यक ठहराने लगें, तब तो समझना चाहिए दुःखद दुर्भाग्य ही हमारे चिन्तन क्षेत्र पर ग्रहण की तरह लग गया है। अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारने की तरह ही इस विवाद को भी एक दुर्घटना की कहा जायेगा।

धर्म और विज्ञान को एक-दूसरे पर गुर्राने की आवश्यकता नहीं है। यह तो दर्पण में अपनी ही छाया पर आक्रमण करने की तरह ही मूर्खतापूर्ण होगा। स्मरण रखे जाने योग्य तथ्य यह है कि न तो विज्ञान के बिना धर्म का अस्तित्त्व रह जाता है और न धर्म रहित विज्ञान व्यक्ति एवं समाज क लिए किसी प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकता है। आस्था रहित उपलब्धियाँ क्षणिक सुख साधन भले ही दे सकें उनका अनैतिक उपयोग अन्ततः सबके लिए सब प्रकार भयंकर अभिशाप की तरह संकट ही उत्पन्न करता चला जायेगा। इसी प्रकार धर्म को यदि उपयोगिता व्यावहारिकता और यर्थाथता की वैज्ञानिक कसौटियों पर न कसा, परखा गया तो वह कल्पना की निरर्थक उड़ानों और अन्ध-विश्वासों की कॅटीली झाड़ियों में ही भटकता रहेगा। उससे निहित स्वार्थो का पोषण व्यवसाय भर चलता रहेगा। धूर्त निहित स्वार्थो का पोषण व्यवसाय भर चलता रहेगा। धूर्त ठगते रहेंगे और मूर्ख ठगाते रहेंगें तब धर्म की स्थिति ऐसी ही बनी रहेगी जैसी आज है। तब उसे उपहासास्पद उपेक्षित और तिरस्कृत स्थिति में पड़े रहने से उवार सकना इस बुद्धिवादी युग में किसी भी प्रकार सम्भव न हो सकेगा। युग की माँग है कि धर्म और विज्ञान के बीच सघन सहयोग होना चाहिए। दोनों को एक-दूसरे का पूरक बनकर अन्धे और पंग के सहयोग से नदी पार कर लेने की तरह समझदारी का परिचय देना चाहिए। असहयोग एवं विरोध की स्थिति बनी रहने पर तो दोनों की ही हानि है। उनका विग्रह समस्त संसार की प्रगति और संस्कृति में भारी व्यवधान उत्पन्न करेगा।

धर्म को पूजा प्रक्रिया तक और विज्ञान को शिल्प व्यवसाय तक सीमित रखा जाय तो दोनों की गरिमा बढ़ेगी नहीं गिरेगी ही। दोनों अपंग अधूरे रह जायेंगे। इन दोनों का परस्पर पूरक होकर रहना उचित ही नहीं आवश्यक है। पदार्थ में सौन्दर्य निखारने का यही तरीका है। कारीगर कलाकार तब बनता है जब अपने क्रिया-कलाप में भावपूर्ण मनोयोग को नियोजित करता है। भावपूर्ण मनोयोग तब कल्पना मात बन कर रह जायेगा जब उसमें श्रेष्ठ निष्ठा जुड़ी न होगी। इसी प्रकार मात्र श्रम की कोल्हू के बैल से, भारवाही गधे से तुलना की जाती रहेगी। दोनों का समन्वय ही कर्म कौशल बनकर सामने आता है।

समग्र ज्ञान को दो भॉगों में बाँटा जा सकता है कि अन्तर्बोध पर आधारित अध्यात्म अथवा धर्म। दूसरा तर्क, परीक्षण, अनुभव तथा बताये गये तथ्यों के आधार पर भौतिक जगत सम्बन्धी निष्कर्ष। इनमें एक प्रथम को विद्या दूसरे को शिक्षा कहा जा सकता हैं। प्रथम जानकारी को प्रज्ञा, दूसरी को बुद्धि कहते हैं और भी स्पष्ट करें तो एक को ज्ञान दूसरे को विज्ञान। एक को धर्म और दूसरे को कर्म कहने से ही वस्तुस्थिति समझी जा सकती है। भ्रमवश यह समझा जाता रहा कि इन दोनों का स्वरूप तथा कार्यक्षेत्र पृथक्-पृथक् है। पर सही बात यह है कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि उन्हें असम्बद्ध होने दिया जाये तो स्थिति बहुत ही विद्रूप हो जायेगी।

धर्म का लक्ष्य है अन्तरात्मा में सन्निहित सत्प्रवृत्तियों का मनोविज्ञान सम्मत पद्धति से इतना समुन्नत करना कि वे व्यावहारिक जीवन में ओत-प्रोत हो सकें। विज्ञान का लक्ष्य है प्रकृतिगत शक्तियों तथा पदार्थो के स्वरूप तथा क्रिया-क्लाप की इतनी जानकारी देना कि उनका समुचित लाभ मानवी सुख-सुविधाओं की अभिवृद्धि के लिए किया जा सके। दोनों का कार्यक्षेत्र प्रत्यक्षतः अलग हैं, जिसमें एक-दूसरे को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। फिर भी वे दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं क्योंकि जीवन आत्मिक एवं भौतिक दोनों प्रकार के तत्वों से मिलकर बना है। जड़ चेतन के समन्वय से ही जीवन का स्वरूप प्रत्यक्ष होता है। इतने पर भी यह अन्तर रखना ही पड़ेगा कि हृदय और मस्तिष्क की तरह दोनों का कार्यक्षेत्र विभक्त हो। एक एक कार्य दूसरे पर थोपने की गलती न की जाये। भौतिक तथ्यों की जानकारी में पदार्थ विज्ञान को प्रामाणिक माना जाय और आत्मिक आन्तरिक चिन्तन एवं भावानात्मक प्रसंग में श्रद्धा की आत्मानुभूति को मान्यता दी जाय।

दार्शनिक रेनाल्ड कहते हैं-धर्मक्षेत्र को अपनी भावनात्मक मर्यादाओं में रहना चाहिए और व्यक्तिगत सदाचार एव समाज गत सुव्यवस्था के लिए आचार व्यवहार की प्रक्रिया को परिष्कृत बनाये रखने में जुटा रहना चाहिए। इतनी बात भी कुछ कम नहीं है। यदि धर्म वेत्ता अपनी कल्पनाओं के आधार पर भौतिक पदार्थ की रीति-निति का निर्धारण करेंगे और ज्ञान के स्वरूप विकास में बाधक ही बनेंगे।

विज्ञानी रूनेग्लोविश इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पृथ्वी दो ध्रुवों अथवा शीत ग्रीष्म ऋतु प्रवाह की तरह एक-दूसरे से भिन्न दीखते हुए भी धर्म और विज्ञान वस्तुतः एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों में से एक के आधर पर जो भी निष्कर्ष निकाला जायेगा वह वस्तुतः अपूर्ण ही रहेगा। पदार्थ में चेतन का अस्तित्त्व और चेतना को सक्रिय रहने के लिए भौतिक पदार्थो की आवश्यकता पड़ती है। दोनों का समन्वय ही विश्व पृथक कर दिया गया तो अधूरे और भटकाव भरे निष्कर्ष ही हाथ लगेंगे।

विज्ञान की प्रगति इसलिए होती गई कि उसने नये ज्ञान प्रकाश के लिए द्वारा खुला रखा और अपनी भूलों के समझने तथा सुधारने के लिए निरन्तर प्रयत्न जारी रखा। जबकि धर्म ने अपने द्वार नये प्रकाश के लिए बन्द कर लिए। पूववर्ती व्यक्तियों तथा पुस्तकों द्वारा जो कुछ कहा लिखा गया उसी को अन्तिम मान लिया गया और येन-केन प्रकारेण उसी को सत्य सिद्ध करने के लिए हठ किया जाता रहा।

इसी भिन्नता के कारण प्रगति की दौड़ में विज्ञान आगे निकल गया और धर्म पिछड़ गया। यदि शोध और सुधार का द्वार खुला रखा गया होता तो निःसन्देह धर्म को भी वैसी ही मान्यता मिलती जैसी कि विज्ञान को मिली है।

भावनात्मक प्रवाह विलक्षण रीति से बहते हैं। एक ही समय में विभिन्न देशों में एक ही प्रकार के महत्त्वपूर्ण प्रयास करते हुए कतिपय महामानव अवतरित होते है और वे सूक्ष्म जगत में गतिशील प्रवाह को अग्रगामी बनाते हुए विश्वव्यापी हलचलों का सृजन करते हैं। धर्मक्षेत्र में प्रायः ऐसा ही होता रहा है। लूथर जर्मनी में, ज्विगी स्विटजरलैण्ड में, केल्विन फ्रांस में, जोन नोक्स स्काटलैण्ड में हुए। उन्हीं दिनों भारत में भी कर्द प्रख्यात सुधारकों ने जन्म लिया। विज्ञान के क्षेत्र में भी ऐसा ही होता रहा है। गैलीलियों इटली में, केपलर पोलैण्ड में, न्यूटन इंग्लैण्ड में एक ही समय हुए और उन्होंने विज्ञान की प्रगति को महत्त्वपूर्ण दिशाओं में अग्रसर किया और पुरान ढर्रे को नई पटरी पर चलने के लिए विवश कर दिया।

भावानात्मक क्षेत्र में क्रान्तिकारी चिन्तन धारा प्रस्तुत करने वाले अनेक मनीषी एक ही समय में उत्पन्न हुए। भले ही वे विभिन्न देशों में जन्मे हो, भले ही उनका परस्पर परिचय न रहा हो पर प्रतीत होता है कि एक ही प्रताप से उठने वाले बुदबुदों की तरह ही वे समय की आवश्यकता पूरी करने में जुटे हुए थे।

धार्मिक एवं भावानात्मक क्षेत्र मे अभिनव प्रकाश उत्पन्न करने वाले विद्वानों में टम्पिले ब्रैथ, ब्रुमनेर, बेरडयेव, औलेने, न्यैगरैन, वैल्लीज, नैवुहरक, वुल्टमान, फैरी, टिलिच आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन लोगों को चिन्तन की परम्परागत शैली का मोड़ देने के लिए सदा सराहा जाता रहेगा।

वैज्ञानिक और आत्मवादी दोनों ही अन्तज्ञ्र्ञान से प्रकाश की किरणें से प्राप्त कर रहे हैं। आविष्कारों को अकारण ही ऐसी सूझ उठी जिसके सहारे वे अपनी खोज का आधार खड़ा कर सकें। पूर्व शृंखलार न होने पर भी इस प्रकार का अनायास अन्तर्बोध यही सिद्ध करता है कि मानवी चेतना के पीछे कोई अलौकिक प्रवाह काम कर रहा थ जिसे अप्रकट को प्रकट करने की उतावली थी। विज्ञान की प्रधान धाराओं के मूल आविष्कत्र्ता इस तथ्य से सहमत हैं कि उन्हें अपने विषय की सूझ-बूझ अन्तःकरण में अकारण ही प्रस्पु टित हुई। यदि उस प्रकाश किरण के लिए कुछ साधारण से कारण भी थे तो भी उनमें कोई नवीनता नहीं थी। वह सब कुछ पहले से होता चला आया था। उमंग उठकर ठप्प नहीं हुई वरन् उसने एक के बाद एक कदम आगे बढ़ने में सहारा दिया और सूझ-बूझ की उस शृंखला में एक के बाद एक कड़ी जुड़ती चली गई। यदि ऐसा न होता तो शोध की उठी हुई इच्छा मार्ग न मिलने पर कुण्ठित ही रह जाती।

विज्ञान का क्षेत्र हो अधिवा धर्म, का उसमें समुद्र मंथन करके कुछ रत्न प्राप्त कर सकने का श्रेय मनुष्य की रहस्यमय प्रवृत्तियों को ही है। वे स्वल्प मात्रा में कहीं भी पायी जा सकती हैं पर यदि किसी प्रकार उनके प्रखर किया जा सके तो उनकी परिणति असाधारण उपलब्धियों के रूप में ही होती है। इसी अवलम्बन के सहारे सामान्य ज्ञान को महद्ज्ञान और सामान्य व्यक्तित्व को महामानव बनने का श्रेय सौभाग्य प्राप्त होता है।

विद्वान ह्नाइट हैड का यह कथन बहुत हद तक सही है कि- "धर्म के सिद्धान्त मानवता के अनुभवों में निहित सत्यता को संक्षेप में प्रदर्शित करने का एक प्रयास मात्रा है। इसी प्रकार विज्ञान भी मानव की ज्ञानेन्द्रिय शक्ति में निहित सत्यों को संक्षेप में सूत्रीकरण करने का प्रयास मात्रा है।"

जीवन उतना जटिल नहीं है जितना कि बन गया है या बना दिया गया है। हँसी-खुशी की सम्भावनाओं से वह भरा-पूरा हैं शरीर और मन की संरचना इस प्रकार हुई है कि वह बाहर के तनकि से साधनों की सुविधा प्राप्त हो जाने पर सहज ही स्वस्थ और सुखी रह सकता है। अति स्वल्प साधनों से अन्य जीवधारी अपना संतोषपूर्ण व्यवस्था क्रम चलाते रहते हैं, न उन्हें रुग्णता सताती है और न खिन्नता। यदि उन्हें सताया न जाय तो शरीर यात्रा की प्रचुर परिमाण में उपलब्ध साधन

www.ignited.in

सामग्री से ही अपना काम चला लेते हैं और हँसी-खुशी के दिन काटते हैं।

मनुष्य को यह सुविधा और भी अधिक मात्रा में उपलब्ध है। उसका अस्तित्व एवं व्यक्तित्व इतना समर्थ है कि न केवल शारीरिक सुविधा की सामग्री सरन् मानसिक प्रसन्नता की परिस्थिति सुविधा की सामग्री वरन् मानसिक प्रसन्नता की परिस्थिति भी स्वल्प प्रयत्न से प्रचुर मात्रा में प्राप्त कर सकता है। इतने पर भी देखा यह जाता है कि मनुष्य खिन्नता और अतृप्ति से ही घिरा रहता है। आधियों और व्याधियों की घटाएँ उस पर छाई रहती हैं।

सौभाग्य जैसे समस्त साधन प्राप्त होने पर भी दुर्भाग्य की जलन में झुलसते रहने के पीछे एक ही कारण ढूंढा जा सकता है कि सहरज सरल रीति-नीति को छोड़कर हम जाल-जंजाल, विद्रूप विडम्बनाओं में उलझ गए और अपना मार्ग स्वयं कंटकाकीर्ण बना लिया। सहज स्वाभाविकता का नाम है धर्म और इसके विपरीत आचरण को अधर्म कहते हैं। वैयक्तिक और सामाजिक कर्तव्यों को जो सही तरह पालन करता है उसे स्वल्प साधनों में भी तुष्ट-पुष्ट और प्रगतिशील देखा जा सकेगा। धर्म की धारणा निश्चित रूप से सुख-शान्ति के प्रतिफल प्रदान करती है।

ऐलिस ने कहा है- मनुष्य के मन और शरीर को आधि-व्याधियों ने इसलिए घेरा है कि उसे धर्म का समुचित संरक्षण नहीं मिला। यदि आहार निद्रा की तरह धर्म को भी जीवन की अनिवार्य आवश्यकता माना गया होता होता तो हम शोक-संतापों की विविध विधि व्याथाएँ सहने से सहज ही बच सकते थे।

सन्त ऑगस्टाइन ने मानव की मानव के प्रति कत्तव्य घोषणा को धर्म माना है। सेन्टपाल का कथन है पतन के गर्त से उत्थान के शिखर पर चढ़ने की सीढ़ी को धर्म कहना उपयुक्त होगा।

हेम्रोज ने धर्म को दो धाराओं में विभक्त किया है, एक आस्था मूलक दूसरी व्यवहारपरक। आस्था की स्थापना अध्यात्म के आधार पर होती है और आचरण व्यवहार का समीकरण धर्मचरण पथ द्वारा किया जाता है। दोनों के समन्वय को धर्म कह सकते हैं। ईश्वरवाद के सहारे ही धर्म सिद्धान्तों की व्याख्या और पुष्टि की जा सकती है।

विलियम वेक ने धर्म को आत्मा का कवित्व कहा है। वे कहते हैं पुराणों के अलंकार में परियों की गाथाएँ और जादुई किंवदन्याँ भरी पड़ी है। इन सबका सार निष्कर्ष यह है कि आत्मा की भाव सरिता यदि उत्कृष्टता की दिशा में बह निकले तो उसका प्रतिफल व्यक्ति और समाज के लिए उतना सरस और आकर्षक हो सकता है जैसा कि देवताओं का सौन्दर्य वैभव और कर्तृत्व।

ल्यूवा ने धर्म को एक सनातन राज मार्ग बताया है जिस पर धीरे-धीरे चलते हुए मनुष्य जाति विकास के वर्तमान स्तर तक पहुँचने में समर्थ हुई है और भविष्य में अधिक कुछ पाने की आशा कर सकती है।

प्लान्टिस ने कहा-धर्म की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि वह मनुष्य के मरणोत्तर जीवन का विश्वास कराती है और दुष्कर्मो एवं सत्कर्म के बीच का अन्तर बताते हुए उसके दुष्परिणामों, सतपरिणामों का निश्चय कराती है। यदि यह मान्यता मनुष्य समाज में से निकल जाय, वह अपने को नाशवान और मर्यादाओं से स्वतंत्र मान बैठे तो फिर यहाँ हर किसी का व्यवहार पैशाचिक स्तर का हो उठेगा। धर्म का अस्तित्व और मनुष्य जाति का अस्तित्व दोनों एक-दूसरे के साथ अत्यन्त सघनता के साथ जुड़े हुए हैं।

फ्रेजर धर्म को ईश्वरीय आदेश और आत्मतृप्ति का आधार मानते थे। कॉम्टे की मान्यता थी कि अन्तरात्मा के मृदुल रस को बाह्य संसार के साथ समन्वित करके कैसे बहुमुखी सरसता उत्पन्न की जा सकती है। इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकने वाली कला का नाम ही धर्म है।

सन्त डाइनाइसिअस का निरूपण यह था कि अदृश्य जगत और दृश्य जगत के परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली धाराओं को एकात्म बना देने वाले महासमुद्र का नाम धर्म है। उसके आधार पर ही विरोध को सहयोग में एवं पृथकता को एकता में बदल जा सकता है।

मेक्समूलर ने अपनी "एन इंट्रोडक्शन टू दी साइन्स ऑफ रिलीजन" पुस्तक में धर्म की विवेचना करते हुए लिखा है-धर्म अन्तरात्मा की पुकार है जो तर्क और जानाकारियों से प्रभावित तो करती है, पर उससे प्रभावित नहीं होती। उसका आधार अतीन्द्रिय है। दिव्य चेतना ही हमें धर्मनिष्ठा अपनाने के लिए प्रेरित करती है।

विलियम जेम्स ने लिखा है-धर्म एक दूरगामी चिन्तन है जिससे व्यक्ति की सामयिक परिस्थितियों की अपेक्षा समष्टि की सर्वांगीण और सर्वकालीन आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है।

अलबर्ट का कथन है-धर्म हमारे भौतिक जीवन को सुखी बनाने में सहायक हो सकता है पर भौतिक सुखों के लिए धर्म का उपयोग करना न तो उचित होगा और न सम्भव। धर्म एक आध्यात्मिक भूख है जिसे तृप्त करने के लिए भौतिक कष्ट भी सहने पड़ सकते हैं।

पास्कल ने कहा है-हृदय के विवेक से धर्म का उदय होता है। उसे मात्र तर्को की बैसाखी लगाकर खड़ा नहीं किया जा सकता।

काण्ट ने धर्म की परिभाषा करते हुए उसे ऐसी मानवी कत्र्तव्यनिष्ठा बताया है जो मस्तिष्क तक सीमित न रहकर अन्तःकरण मे निष्ठा में घनीभूत हो गई हो।

तत्त्वदर्शियों के उपर्युक्त अभिवचनों में धर्म शब्द के अन्तर्गत जिस आधार की चर्चा की है उसे उत्कृष्टवादी चिन्तन और आदर्शवादी कत्र्तृव्य के अन्तर्गत ही गिना समझा जाना चाहिए। कत्र्तव्य परायणता का ही दूसरा नाम धर्म है। शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक और सार्वभौमिक जिम्मेदारियों से मनुष्य की उच्छृंखलतार को मर्यादित किया गया है उसे अपने स्तर के अनुरूप सृष्टि संतुलन के प्रति अपनी जिम्मेदारियाँ भी निबाहनी होती हैं। धर्म का प्रयोजन इसी मानवोचित्त शालीनता और कत्र्तव्यनिष्ठा को अक्षुण्ण बनाये रखना है। संस्कृति और सम्प्रदायों में क्षेत्रीय और सामयिक परिस्थितियों के अनुसार आचार व्यवहार की व्यवस्था रहती है। इसलिए परिस्थिति के अनुसार उनमें बराबर सुधार परिवर्तन करना पड़ता है पर धर्म के बारे में ऐसी बात नहीं है वह शाश्वत और सनातन है। उसका स्वरूप सदाचार, मार्यादा और लोकहित के रूप में चिर अतीत से ही निर्धारित किया जा चुका है उसमें परिवर्तन की आवश्यकता कभी भी किसी को भी नहीं पड़ सकती।

सुख-शान्ति के लिए अधिक सुविधाजनक साधनों की खोज में विज्ञान और शासन के प्रयास जुटे रहते हैं पर यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए, मनुष्य एक चेतनात्मक परिपूर्ण सत्ता है। आनन्द का उद्गम उसके भीतर है। वही अन्तर्ज्योति जब बाह्य जगत पर भी प्रतिबिम्बित होती है। तो सौन्दर्य, संतोष एवं रसानुभूति का अनुभव होता हं विचारणा का स्तर ऊँचा उठाये बिना विपुल साधन सम्पन्न होने पर भी न आनन्द मिल सकेगा न उल्लास न संतोष। विचारणा को उत्कृष्टता के स्तर तक उठाने और सुदृढ़ बनाने में धर्म का तत्त्वज्ञान ही समर्थ हो सकता है। सहायता नहीं कर सकता है।

'मार्डन मैन इच सर्च ऑफ रिलीजन' ग्रन्थ में यह प्रतिपादन किया गया है - कि विज्ञान में भी किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने के लिए विशिष्ट यंत्र ही उपयोगी होते हैं। न तो सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा दूरस्थ तारा दिखाई देता है और नहीं सर्जन की छुरी से कालेनिया के अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार बुद्धि के द्वारा आध्यात्मिक सत्यों का परीक्षण नहीं किया जा सकता भले ही वह कितनी ही तीक्ष्ण क्यों न हो

विज्ञान द्वारा सुविधा साधनों की वृद्धि की दिशा में किए गए प्रयासों से समुचित लाभ तभी उठाया जा सकेगा जब भावना एव दृष्टिकोण का ऊँचा उठा सकने में समर्थ धर्मत्त्व को समझने के लिए भी समान्तर प्रयास किया जाय।

'ईबोल्यूशन इन साइन्स एण्ड रिलीजन' के लेखक का कथन है- विज्ञान ने शक्ति को पदार्थ के रूप को पदार्थ के रूप में और पदार्थ को शक्ति के रूप में परिवर्तित करके यह सिद्ध कर दिया है कि सूक्ष्म को स्थूल को सूक्ष्म में बदला जा सकता है।

दर्शन भी यह सिद्ध करता रहा है कि विचार को घटना के रूप में विकसित किया जा सकता है और घटनाएँ विचारों का निर्माण कर सकने में समर्थ है।

पदार्थ से सुख मिलता है यह सिद्धान्त भी अपने स्थान पर ठीक है। पर गलत यह भी नहीं कि उत्कृष्ट चिन्तन उपलब्ध साधनों की मात्रा अधिक न होने पर भी हस्तगत है। उससे इतना आनन्द उठाया जा सकता है जो परिपूर्ण संतोष प्रदान कर सके।

सामाजिक सुव्यवस्था के लिए धर्म धारणा से बढ़कर और कोई साधन नहीं हो सकता। बलपूर्वक अवांछनीयता पर नियंत्रण करने में शासन की अधिकांश क्षमता नष्ट होती रहती है फिर भी कुछ हमें लाभदायक समाधान नहीं मिलता। यदि धर्म धारणा को प्रखर और समुन्नत बना सकने योग्य वातावरण उत्पन्न किया जा सके, उचित साधन जुटाये जा सके तो निःसन्देह सामाजिक सुव्यवस्था और राष्टीय समर्पण का प्रयोजन सहज ही पूरा हो सकता है। सार्वभौम और सर्वकालीन सुख-शान्ति की स्थापना धर्म धारणा को सुदृढ़ और समुन्नत बनाकर ही की सकती है।

पदार्थ के रूप में विज्ञान भी आन्तरिक सत्ता का उद्घाटन करता है। धर्म के क्षेत्र में परमात्मा एक विश्व व्यापक शक्ति है और पदार्थ भी शक्ति के ही कण हैं। सच तो यह है कि शक्ति के अतिरिक्त संसार में और कुछ है ही नहीं। धर्म उसे अन्तर्चेतना के रूप में देखता हैं। वह उदाहरण देता है कि गाँधीजी का आत्मबल ही कथा जिसने ब्रिटिश सत्ता को बिना लड़े निकाल दिया और विज्ञान कहता है कि एक छोटे से शास्त्र ने जो हिरोशिमा के 70 हजार नागरिक पल भर में भून डाले वह क्या कम जबर्दस्त शक्ति थी। भले ही एक का स्वरूप रचनात्मक हो और दूसरे के स्वभाव ध्वंस, पर विज्ञान और धर्म दोनों ने ही शक्ति के एक ही स्वरूप की जानकारी दी है। दोनों में कोई विरोध नहीं है।

www.ignited.in

यह झगड़ा तो राम और शिव की तरह का है। राम शिव के उपासक हैं और शिव राम के। पर शिवजी के भक्त भूत-प्रेतों का स्वभाव, राम के भक्त रीछ-वानरों के स्वभाव से नहीं मिलता। इसीलिए वे परस्पर लड़ते हैं। आज विज्ञान धर्मावलम्बियों को हीन मानता है तो धर्म को मानने वाले भौतिकवादी या पदार्थ की शक्ति पर विश्वास करने वालों का ओछा मानते हैं। दरअसल दोनों को एक समझना चाहिए कि धर्म और विज्ञान के मूलभूत उद्देश्य एक ही सत्य को प्राप्त करना है।

रामकृष्ण परमहंस के शब्दों में मंगल का उपवास लड़की भी रखती हैं और माँ भी, दोनों के लिए "मंगल" एक ही है पर मान्यताएँ अलग-अलग हैं। वह कहती हैं कि मैं मंगल का व्रत हूँ, माँ कहती है कि मैं मंगल का व्रत हूँ - उद्देश्य दोनों के एक हैं केवल-मैं का झगड़ा है।

धार्मिकता अनिवार्य होनी चाहिए पर उसका यह अर्थ नहीं कि विज्ञान को छोड़ दिया जाय। विज्ञान का परित्याग ही विश्वास का अन्ध-विश्वास और श्रद्धा को अन्ध-श्रद्धा बनाता है। जबकि धर्म का उद्देश्य सत्य को खोजकर मनुष्य को एक ऐसा रास्ता दिखाना है जिसमें वह अपने हर पड़ोसी के साथ, मिलने-जुलने वाले के साथ शान्ति, प्रेम और भाई-चारे का जीवनयापन कर सके। भारतवर्ष में इस समन्वय की गंगा बह चुकी है। जब यहाँ धर्म और विज्ञान दोनों का समन्वय किया गया था और मनुष्य जीवन को इस तरह सन्तुलित किया गया था जिसमें धर्म भी था, विज्ञान भी; तभी यह देश चरमोत्कर्ष कर सका था।

धर्म-ग्रंथों में जीव का ईश्वर अंश बताते हुए कहा जाता है व्यक्ति भगवान है (ईसा, कृष्ण या राम के रूप में) अर्थात् व्यक्ति में ईश्वरीय गुणों की खोज करते हैं लेकिन विज्ञान ब्रम्हाण्ड के ज्ञान में वृद्धि करता है तब हमें पता चलता है कि रचयिता (क्रियेटर) मनुष्य नहीं हो सकता। अलबत्ता व मनुष्यों की सी शक्ति, क्षमता, ज्ञान और सामश्र्य का विकसित रूप होना चाहिए। इस दृष्टि से विज्ञान एण्क सर्वव्यापी तत्त्व होना चाहिए। मनुष्य को उसको प्रतिबिम्ब होना चाहिए।

यदि इन निष्कर्षो को मान लेते हैं तो सचमुच मनुष्य को दीक्षित करने की एक बड़ी भारी समस्या हल हो जाती है। फिर तो मनुष्य को इतना समझना शेष रह जाता है कि हम अपनी शक्तियों को अपव्यय से बचाकर उनका किस प्रकार विकास करं कि अपनी अपूर्णता ईश्वरीय पूर्णता में परिवर्तित हो जाय। इस कार्य को फिर धर्म पूरा कर सकता है।

दोनों का लक्ष्य अच्छाई और सत्यान्वेषण रहे तो विज्ञान और धर्म एक-दूसरे का विरोध कर भी नहीं सकते। अभी हमारा विज्ञान केवल पदार्थ सम्बन्धी जानकारी देता है, लक्ष्य नहीं बताता, इसलिए धर्म की दृष्टि में वह अहितकारक है। इसी प्रकार अध्यात्म अन्ध-विश्वास को मान्यता देता हैं जिसे विज्ञान कभी स्वीकार नहीं कर सकता। यह दोनों की भूलें हैं। दोनों में से किसी को भी अपनी सच्चाई से विमुख नहीं होना चाहिए।

विज्ञान विशिष्ट तरीकों से ज्ञान प्राप्त कराता है और धर्म की अनुभूति भिन्न प्रकार की होती है। विज्ञान की दिशाएँ पदार्थ के ज्ञान की ओर बढ़ती हुई चली जाती हैं और एक दिन वहाँ पहुँचेगी जहाँ से ईश्वरीय शक्तियों ने स्वेच्छा या अन्य किसी कारण से पदार्थ में परिवर्तित होना प्रारम्भ किया। इसी प्रकार आत्मा का प्रकाश तथा आत्मा की विशालता की अनुभूति भी एक दिन उसी सर्वव्यापी सर्वचेतन्य तत्त्व तक पहुँचा देती है। दोनों एक स्थान से उठते हैं और दोनों के गन्तव्य भी एक हैं, इसलिए उनको यहाँ भी साथ-साथ ही रहना चाहिए। मनुष्य को इस जीवन में भौतिक सुखों की अनुभूति भी रहनी चाहिए। मनुष्य को इस जीवन में भौतिक सुखों की अनुभूति के लिए प्रयत्नशील भी, इसलिए दोनों का समन्वय आवश्यक हो जाता है।

अकेले विज्ञान को ही महत्त्व देना तो अन्धों की कहानी की तरह होगा। एक बार अन्धा अपने घर से निकल पड़ा और उस दरवाजे पर जाकर सहायता के लिए पुकारने लगार जिस घर में एक दूसरा अन्धा रहता था। वह अन्धा बाहर तो आया पर कोई रास्ता बताने के पहले उसे यही पता लगाना कठिन हो गया कि यह अन्धा किधर से आया है और वह किधर जाना चाहता है, वह दिशा किस तरफ है। बेचारे से असमर्थता ही प्रकट करते बनी। यदि विज्ञान केवल पदार्थ से ही उलझा रहा तो मनुष्य शरीर में भावनाओं के ईश्वरत्व के विकास का क्या बनेगा? यदि सब कुछ पदार्थ को ही मान लिया गया तो प्रेम, मैत्री, सेवा, संतोष और शान्ति की भावनाओं का क्या होगा? क्या इनकी उपेक्षा करके मनुष्य सुखी रह सकता है?

भौतिकवादी दर्शनाशास्त्र (मैटेरियलिस्टिक फिलॉस्फी) मृत्यु के बाद जीवन के अस्तित्त्व में विश्वास नहीं, करता, लेकिन विज्ञान अब भौतिकता से आगे बढ़ गया है। अब यह माना जाने लगा है कि शरीर और विश्व में कुछ वस्तुएँ जैसे संस्कार-कोश (जीन्स) अमर तत्व हैं उनका कभी नाश नहीं होता? उसी प्रकार अब भौतिकतावाद का यह सिद्धान्त "पदार्थ नष्ट नहीं होता" पुराना पड़ गया। इलेक्ट्रान जो कि पदार्थ का विद्युत आवेश है ऊर्जा केन्द्र (सेन्टर्स ऑफ एनर्जी) में वाष्पीकृत हो जाता है और ऊर्जा (एनर्जी) में बदल जाता है, पदार्थ से भार होता है, पर ऊर्जा (एनर्जी) में कोई भार नहीं रह जाता।

परामनोविज्ञान अब मानव-विज्ञान के उस अध्यात्म में प्रवेश कर रहा है जिसे हम पुनर्जन्म कहते हैं और इस प्रकार विज्ञान

धर्म की मान्यताओं पर आ रहा है यह कहा जा सकता है-भारतवर्ष के प्रायः सभी धर्म पुनर्जन्म को मानते हैं। मनोविज्ञान के अनुसंधानकत्र्ताओं को ऐसे लड़के-लड़कियाँ मिली हैं जो अपने पूर्वजन्मों का हाल बताती है। अमेरिकी मनोवैज्ञानिक डॉ. स्टीवेन्सन कुछ दिन पूर्व नई दिल्ली आये, उन्होंने बताया कि मैंने विश्व के लगभग 500 मामलों का अध्ययन किया है उससे मुझे विश्वास हो गया है कि पुनर्जन्म की कल्पना कपोल कल्पित नहीं। उनकी इस सम्मति को वैज्ञानिकों में बहुत महत्त्व दिया जा रहा है। यह बताता है कि वैज्ञानिकों में बहुत दिया जा रहा है। यह बताता है कि वैज्ञानिक धार्मिक सत्यों से आँख नहीं मींचते वरन् वे अब उस स्थान पर हैं जहाँ से धर्म के सत्यों को सरलता से प्रतिपादित किया जा सकता है।

वैज्ञानिक राबर्ट ब्लेचफोर्ड ने माना कि 'आज भौतिकवाद और भोगवाद के पग उखड़ रहे हैं और अब वह समय आ गया है जब विज्ञान खाओं पिओ मौज करो (ईट-ड्रिंक एण्ड बी मेरी) के भौतिकतावादी सिद्धान्त को छोड़ देगा और आध्यात्मिक क्षेत्र मे प्रवेश करेगा। 'डॉ. ब्लेचफोर्ड का यह सिद्धान्त अब पश्चिम (वेस्टर्न कन्ट्रीज) में फिलॉस्फी ऑप ब्लेचफोर्ड (ब्लेचफोर्ड के सिद्धान्त) के नाम से तीव्रता से प्रसिद्ध हो रहा है।

वैज्ञानिक तरीकों से प्राप्त ज्ञान में अन्तज्र्ञान तत्त्व अन्तर्हित है जबकि आत्म चेतना का प्रकाश भी सत्य को प्रदर्शित करता है। दोनों ही रहस्यपूर्ण हैं और जैसा कि विलियम जैम्स ने कहा-दोनों ही रहस्यपूर्ण हैं और जैसा की दिशा में ही है। रहस्य में वास्तविकता भी हो सकती है और निरर्थक एवं पथभ्रष्टता भी। इसलिए जब सत्य और रहस्यों की दिशा में बढ़े तब मनोवैज्ञानिक सत्य छुपे नहीं उसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि धर्म और विज्ञान दोनों ही साथ-साथ पथ-प्रदर्शन करें। जहाँ तक विज्ञान की पहुँच है वहॉ तक का अन्तज्र्ञान ही देकर वह धर्म का रास्ता साफ करे और धर्म का कत्र्तव्य है कि वह वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ अपनी उपलब्धियों की संगतियाँ बैठाकर उसे अपूर्णता को दूर करे जो विज्ञान के लिए आगे बढ़ने में आकस्मिक अवरोध के कारण उत्पन्न होती है। विज्ञान पदार्थ की स्थूलता का विश्लेषण कर सकता है, ज्ञान और अनुभूति के प्रसंग में वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। ज्ञान और अनुभूति के लिए विचार और भावनाओं की शक्तियाँ काम देती हैं और इनका विकास धार्मिकता के अन्तर्गत आता है। मनुष्य पदार्थ और भावनाओं का मिला-जुला स्वरूप है इसलिए सम्पूर्ण सत्य की खोज के लिए दोनों का विश्लेषण आवश्यक है। अकेला विज्ञान भावनाओं की परिधि तक पहुँच कर रूक जाता है जबकि धर्म भी पदार्थ को जानकारी न दे सकने के कारण मनुष्य को उसके भौतिक आकर्षण से नहीं बचा पाता। इसलिए विकास और अन्तिम सत्य की खोज तभी सम्भव होगी जब इनमें से किसी को भी छोड़ा न जाय।

पिछले दिनों धर्म और विज्ञान को विरोधी माना जाता रहा है। दोनों के तर्क, प्रतिपादन और आधार एक-दूसरे से भिन्न समझें जाते रहे हैं। एक को प्रत्यक्षवादी और दूसरे को परोक्षवादी कहकर उन्हें असम्बद्ध कहा जाता रहा है। इसलिए दोनों की दिशा विपरीत मान ली गई और माना गया कि किसी धार्मिक के लिए विज्ञान को समझना एवं किसी वैज्ञानिक को धर्म के बारे में जानना आवश्यक नहीं।

इतने पर भी यह शाश्वत सत्य यथा स्थान है, धर्म और विज्ञान जुड़वा भाई हैं। एक ही पर्वत से निकलने वाले दो महा निर्झर हैं। क्षेत्र भिन्नता की दृष्टि से उनका स्वरूप भिन्न है तो भी वे एक ही महाप्रयोजन की पूर्ति करते हैं।

उनकी उपयोगिता मनुष्य के कन्धों में जुड़ी हुई दो भुजाओं जैसी है। वे एक-दूसरे के विरोधी नहीं वरन् पूरक हैं।

धर्म और विज्ञान दोनों एक ही महा सत्य को दो दिशाओं से खोजना आरम्भ करते हैं और जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं वैसे-वैसे एक-दूसरे क अधिकाधिक निकट पहुँचते हैं। विज्ञान जड़ जगत की संरचना और क्रिया-पद्धति का स्वरूप निर्धारण करता है और यह बताता है कि उसका अधिकाधिक उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। धर्म चेतन जगत के रहस्यों का उद्घाटन करता है और सिखाता है कि विश्व की इस महती शक्ति का व्यक्ति और समाज के लिए श्रेष्ठतम उपयोग क्या हो सकता है। जड़ और चेतन के उभ-पक्षीय रहस्यों का उद्घाटन एवं उपयोग सीखने के लिए हमें धर्म और विज्ञान का समान्तर उपयोग करते हुए आगे बढ़ना होगा।।

आदिम काल में जड़ पदार्थो के सम्बन्ध में अनेकों भ्रान्त मान्यताएँ गढ़ ली गई थीं। प्रकृति की साधारण हलचलें देवताओं या भूत-प्रेतों की करतूतें समझी जाती थी। वर्षा, आँधी, तूफान, सर्दी, गर्मी, दुर्भिक्ष, रोग, हानि, दुर्घटना आदिं के साथ किन्हीं अदृश्य आत्माओं का अभिशाप समझा जाता था और सफलताओं में उनका वरदान माना जाता था। देवताओं की अप्रसन्नताओं को प्रसन्नता में बदलने के लिए तरह-तरह के विषय, अनुरोध, भेंट, उपहार प्रस्तुत किए जाते थे। विज्ञान ने उन सब मान्यताओं को झुठला दिया और बताया कि प्रकृति की शक्तियों को यंत्र बन्धनों में बाँधकर वह सब किया जा सकता है जो मंत्र-तंत्र से सम्भव नहीं था। जिन कारणों से संसार में अभाव दारिद्रय का बाहुल्य था-उनके निवारण कर सकने योग्य अनेकानेक साधन उपस्थित करके

www.ignited.in

समृद्धि, प्रगति की ओर मनुष्य को बढ़ाया। इस दृष्टि से विज्ञान की मनुष्य जाति ऋणी है, उसे पाकर निश्चित रूप से सुख-सुविधाओं में वृद्धि हुई है। उसकी उपयोगिता के कारण विज्ञान के प्रति हर किसी का सम्मान है। वह सत्य के लिए ही नहीं, सुख-शान्ति के लिए भी हमारा पथ-प्रदर्शन करता है। दुरूपयोग की तो बात ही अलग है। गलत प्रयोग करके तो अमृत भी विष बन सकता है। दुष्ट प्रयोजन के लिए यदि विज्ञान का प्रयोग किया जाय तो इसमें प्रयोक्ताओं की मूर्खता ही निन्दनीय ठहराई जायेगी, उससे विज्ञान की गरिमा नहीं घटेगी।

ठीक यह बात धर्म के सम्बन्ध में लागू होती है। आदिमकाल का मनुष्य एक दुर्बलकाय पशु मात्र था। उसके पास कोई आचार, व्यवहार, दर्शन आदर्श, नियम, विधान नही था। मत्स्य न्याय ही चलता था, जंगल का कानून ही मनुष्य भी पालते थे। अपनी सुविधा के साथ दूसरों का हनन करने में निकृष्ट स्तर के प्राणी संकोच नहीं करते; वैसा ही बर्ताव मनुष्यों का था। समझ की दृष्टि से थोड़ा विकसित होने के कारण वह अन्य पशुओं की तुलना में अधिक छली और अधिक दुष्ट था।

धर्म के उदय ने आचार, मर्यादा और कत्तव्य की जंजीरों में उन आदिमकालीन क्रूरताआं को जकड़ा और सभ्यता का सृजन करके मनुष्य को शालीनता एवं सामजिकता का पाठ पढ़ाया। यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है जिसे धरती की समस्त सम्पदा से भी बढ़ी-चढ़ी माना जा सकता है। धर्म ने क्रमशः पशुता के, असुरता के पर्तो को उखाड़ा है और मनुष्य को उस स्तर तक पहुँचाया है जिसमें वह बढ़ी-चढ़ी सम्पत्ति के आधार ही नहीं सुविकसित सभ्यता के आधार पर भी गर्व करने का, गौरवान्वित होने का अधिकारी है।

लोभ-लाभ की अकांक्षा से अथवा द्वेष-क्रंध भरी प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर क्रूर कर्म कर बैठने पर बहुत कुछ बन्धन धर्म ने लगाया हैं उदार, दयालु, सहिष्णु, सरल एवं सहृदय बनने में भी धर्म का योगदान कम नहीं है। अपराध-निरोधक, सरकारी और गैरसरकारी जितने भी प्रतिबन्ध, प्रतिरोध हैं उन सबकी सम्मिलित शक्ति से भी कहीं बढ़ी-चढ़ी शक्ति धर्म की है जो मनुष्यता की शालीनता को सजीव बनाये रहती हैं और जिसके आधार पर आनन्द, उल्लास के स्नेह, सौहार्द के आदर्श, उत्कर्ष के अभिनव उदाहरण प्रस्तुत होते है। वस्तुतः विकास का सर्वोत्तम आधार इन्हीं उपलब्धियों को माना जा सकता है।

विज्ञान क्रमशः आगे बढ़ रहा हैं-धर्म भी अपने उस रूप से कहीं आगे बढ़ चला जिसे किसी समय बहुत आदर प्राप्त था, पर अब उसे अन्ध-विश्वास का पोषक माना जाता है। विज्ञान के सम्बन्ध में भी यही बात है। पत्थरों को रगड़कर जब आग पैदा की गई थी तब वह एक महती क्रान्ति थी। आग की उत्पत्ति ने उस समय मानव प्रगति मे उतना ही बड़ी योगदान दिया था जितना कि इन दिनों बिजली द्वारा किया जा रहा है। आज की दृष्टि से पत्थर रगड़कर चिन्गारी निकालने की कला एक विनोद मात्र है। ठीक इसी तरह धर्म सम्बन्धी वे मान्यताएँ जो अब दकियानूसी कही जा सकती हैं कभी अपने समय में महती आवश्यकता पूरी कर रही थी। उन दिनों का पिछड़ापन उन परम्पराओं ने ही हल्का किया था जिन्हें आज हम उपहासस्पद मानते हैं।

विज्ञान पालटिनिश का कथन है-विज्ञान और दर्शन तेजी से नजदीक दौड़ते चले आ रहे हैं और वह दिन दूर नहीं जब वे अपने बाहुपाश मे एक-दूसरे को कस लेंगे। विज्ञान प्रत्यक्ष है वह यंत्रों द्वारा-प्रयोगशालाओं में प्रमाणित किया जा सकता है। धर्म अप्रत्यक्ष तो है पर अप्रमाणित नहीं। अधर्मी व्यक्ति के उच्छृंचखल जीवन और सुसंस्कृत व्यक्ति की, शालीनता की प्रतिक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि धर्म की उपयोगिता प्रामणिक है। वह व्यक्ति के अन्तरंग और बहिरंग जीवन में सर्वतोमुखी प्रगति के आधार प्रस्तुत करती है।

विद्वान एच, के. शिलेंग ने अपनी पुस्तक 'साइन्स एण्ड रिलीजन' में यह भविष्यवाणी की है कि अगली शताब्दी में धर्म को विज्ञान का और विज्ञान को धर्म का अविच्छिन्न अंग मान लिया जायेगा। अस्तु विज्ञान और धर्म के समन्वय से ही उसकी उभय-पक्षीय प्रगति का सुसन्तुलित आधार बन सकेगा।

भाव-सम्वेदनाआं का क्षेत्र उतना ही सुविस्तृत है जितना कि भौतिक जगत। यह एक तथ्य है कि मनुष्य की आत्म संतुष्टि शान्ति और प्रसन्नता भावनाओं के ही स्पन्दन हैं फिर भी भावनाओं की उपेक्षा की जाती रहती है। भाव विज्ञान और धर्म एक ही सिक्के के उभयपक्ष हैं, दो भिनन वस्तुएँ नहीं। इस तरह धर्म के बिना हमारा काम वैसे ही चल नहीं सकतां। जिस तरह अन्न और वस्त्र के बिना, इससे मानवीय व्यवहार प्रभावित होता है। धर्म का उद्देश्य उसे निरंकुश होने से बचाना है अतएव उसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। विज्ञान के साध्वि धर्म का समन्वय बना रहने से ही मानवीय प्रगति की शान्ति और प्रसन्नता स्थिर रह सकती है इससे कम में नहीं। निकट भविष्य में वैज्ञानिक धर्म अर्थात् तर्क, तथ्य एवं प्रमाणों की कसौटी पर खरा उतरने वाला धर्म ही जीवित रहेगा। वैज्ञानिक धर्म की यही आधारशिला है।

**सहायक सन्दर्भ ग्रंथ सूची**

भारतीय संस्कृति की विरासत – पुखराज जैन

भारत का इतिहास – इलिएट डारसन

भारतीय समाज का संस्कृति - पी.सी. खरे

भारतीय समाज व संस्कृति – डॉ. जी. के. अग्रवाल

समाज शास्त्र – शर्मा एण्ड गुप्ता

धर्म दर्शन का सर्वेक्षण - डॉ. डी.डी. पाण्डेय

भारतीय दर्शन/ज्ञान मीमांसा एवं तत्व मीमांसा – डॉ. हृदय नारायण मिश्रा

पं. श्री राम शर्मा आचार्य का जीवन दर्शन

---

**Corresponding Author**

**Dr. Anju Srivastava***

Associate Professor, Department of Sociology, Arya Kanya Degree College, Prayagraj (UP)

dr.anju.shri@gmail.com